पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है, दूसरी गाथा चलती है। पहली गाथा में इष्टदेव को-मूर्ति को नमस्कार किया। पुरुष अर्थात् आत्मा, उसके प्रयोजन की सिद्धि, चैतन्य के स्वरूप की प्रयोजन की सिद्धि होने को, चैतन्यस्वरूप को पूर्ण प्राप्त - ऐसे परमेश्वर को ऐसी पर्याय है, ऐसा ज्ञान करके, ज्ञानसहित उन्हें इष्टदेव स्वीकार करके नमस्कार किया है।

दूसरी गाथा में आगम को नमस्कार (किया)। परमागम का बीज जो अनेकान्त, परमागम का बीज / जीव, परमागम का जीव अनेकान्त है, उसकी व्याख्या की। यहाँ आया है, देखो! भावार्थ में।

www.vitragvani.com

कथंचित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है, कथंचित् गुण–पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप है। यहाँ तक आया है। भावार्थ, दूसरी गाथा का भावार्थ। क्या कहा? कि यह आत्मा आदि पदार्थ ऐसे हैं। पहले तो ऐसा कहा, स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और पर से नहीं। है और नहीं विरोध जैसा दिखता है। है और नहीं विरोध जैसा (दिखे), तथापि **'विरोधमथनं'** — ऐसा कहा है न? उस विरोध का मंथन करनेवाला है, नाश करनेवाला है। कौन? अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद। स्वपने है और परपने नहीं – इस तरह विरोध का नाश करनेवाला है। समझ में आया? 'है' वह कैसे 'नहीं'? और 'नहीं' वह कैसे 'है'? अर्थात् विरोध हुआ। उसका – यहाँ विरोध का **'मथनं'** करनेवाला – नाश करनेवाला है, अभाव करनेवाला है। अपने स्वरूप में – द्रव्य,क्षेत्र, काल, भाव से है और परद्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं; इस प्रकार स्याद्वाद, वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को सिद्ध करता है। इसलिए अनेकान्त को नमस्कार किया गया है। समझ में आया?

तीसरा बोल आया। **कथंचित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है, कथंचित् गुण–पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप है।** यह वस्तु जो है, उसके समुदाय अर्थात् गुण समुदाय का एकरूप, इस अपेक्षा से एक है और गुण–पर्याय की अपेक्षा से अनेक है। यह दो विरोध है, दो विरोध है। एक, वह अनेक कैसे? और अनेक, वह एक कैसे? तथापि **'विरोधमथनं'**विरोध का **'मथनं'**। विरोध को नाश करनेवाला अनेकान्त है। दूसरी गाथा का भावार्थ, दूसरी गाथा का भावार्थ। **'मथनं'** है न? **'मथनं'** मथन, मथन करता है न? समझ में आया? पुस्तक रखना, पुस्तक है न?

तीसरा बोल। **कथंचित् संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा से गुण–पर्यायादि अनेक–भेदरूप है।** कौन? वस्तु। वस्तु किसी अपेक्षा से, कथंचित् अर्थात् किसी अपेक्षा, संज्ञा से। क्योंकि आत्मा का नाम आत्मा, गुण का नाम गुण, यह संज्ञा में अन्तर है। संख्या में अन्तर है – द्रव्य एक, गुण, अनेक। लक्षण में अन्तर है – द्रव्य का लक्षण गुण–पर्याय का धारण; गुण का लक्षण पर्याय का प्रगट आदि होना। **गुण–पर्यायादि अनेक–भेदरूप है।** प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, गुण और अवस्था द्वारा भेदरूप है। अनेक का अर्थ भेदरूप है। समझ में आया?

www.vitragvani.com

कथंचित् सत् की अपेक्षा से अभेदरूप है। वस्तुरूप से अभेद है। वैसे देखो तो यह भेद, वह अभेद - विरोध दिखता, परन्तु इस विरोध का मंथन करनेवाला, मथन करनेवाला अनेकान्त, उसका मंथन करके नाश करता है। अनेक गुण की अपेक्षा से और पर्याय की अपेक्षा से उसे भेद कहते हैं; वस्तु की अपेक्षा से उसे अभेद कहते हैं तो विरोध का नाश करता है। एक का एक भेद और वह का वह अभेद कैसे होगा? उसका (इस विरोध का) नाश करता है। देखो! परमागम का जीव है यह! शास्त्र का यह जीव है। दूसरी गाथा में आया न?

कथंचित् द्रव्य अपेक्षा से नित्य है, कथंचित् पर्याय अपेक्षा से अनित्य है। वस्तु है, वह कायम टिकने की अपेक्षा से नित्य है; उसकी अपेक्षा से अनित्य है - ऐसा नहीं है और पर्याय-अपेक्षा से, बदलने की अपेक्षा से अनित्य है, ऐसी विरोधता दिखने पर भी, द्रव्य-अपेक्षा से नित्य और पर्याय-अपेक्षा से अनित्य - ऐसे विरोध का मंथन-नाश करता है। पाठ में है न? **'विरोधमथनं सकलनयविलसितानां नमाम्यनेकान्तम्'** आचार्य स्वयं अनेकान्त को नमस्कार करते हैं। अनेकान्त, वह आत्मा का स्वरूप है, अमृतस्वरूप है, उसे नमस्कार करते हैं। अनेकान्त तो, जड़ में भी अनेकान्त है तो उसे नमस्कार किया? यहाँ तो अनेकान्त को नमस्कार करते हैं। आत्मा को, अनेकान्त-स्वरूप है, उसे नमस्कार करते हैं। अनेकान्त का जो ज्ञान और भान, उसे यहाँ नमस्कार करते हैं। भाई! वरना अनेकान्त तो जड़ में भी है। समझ में आया, इसमें?

यह आत्मा स्वयं अपने स्वरूप की—गुण-पर्याय अपेक्षा से भेद(रूप है), सत् की अपेक्षा से (अभेद है)। भेद, वह अभेद कैसे हो? पर्याय से आश्रय करे तो पर्याय तो भेदरूप है, आश्रय करे वह अभेद है। तो भेद होवे, वह अभेद कैसे हो? कि भाई! भेद हो, वह अभेद कैसे? वस्तु की अपेक्षा से अभेद है, गुण-पर्याय की अपेक्षा से भेद है; इस तरह अनेकान्त-स्याद्वाद विरोध के भाव का नाश करनेवाला है। कहो, समझ में आया?

कथंचित् द्रव्य-अपेक्षा से नित्य है,... भगवान आत्मा, द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है, **कथंचित् पर्याय-अपेक्षा से अनित्य है।** जिस अपेक्षा से नित्य है, उस अपेक्षा से अनित्य होवे तो विरोध आवे, परन्तु जिस अपेक्षा से नित्य है, उस अपेक्षा से अनित्य

www.vitragvani.com

नहीं; इसलिए उसमें विरोध नहीं आता – ऐसा कहते हैं। पर्याय से काम लिया जाता है। वह काम लेने की वस्तु जो ध्रुव है, उसमें वह पर्याय नहीं है; इसलिए विरोध नहीं आता। **इस प्रकार स्याद्वाद सर्व विरोध को दूर करता है।** उस **'विरोधमथनं'** का अर्थ किया। इस प्रकार भगवान आत्मा, त्रिकाल स्वरूप की अपेक्षा से द्रव्य से नित्य है, अवस्था से अनित्य है। इस प्रकार अवस्था से अनित्य और द्रव्य से नित्य कहकर विरोध का नाश करनेवाला है।

स्यात् अर्थात् कथंचित् नय–अपेक्षा से; वाद अर्थात् वस्तु–स्वभाव का कथन, इसे स्याद्वाद कहते हैं, इसी को नमस्कार किया है। लो! स्याद्वाद को नमस्कार किया। स्याद्वाद तो छहों द्रव्यों को है। यहाँ अनेकान्त का ज्ञान हुआ न! भले पर का हो और स्व का (हो)। परमागम का बीज अनेकान्त है। जो ज्ञान हुआ कि स्वरूप से शुद्ध, ध्रुव; पर्याय से अशुद्ध, पलटती दशा, स्वभाव ध्रुव — एक द्रव्य में ऐसा कैसे होगा? विरोध दिखता है, उसे अनेकान्त, ज्ञान द्वारा उस विरोध का नाश करता है। ऐसे अनेकान्त को, यहाँ अपने सम्यग्ज्ञानस्वरूप अनेकान्त भाव, उसे नमस्कार किया है। कहो, समझ में आया?

गाथा - ३

आगे आचार्य, ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं–

लोकत्रयैकनेत्रं निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन।
अस्माभिरुपोद्ध्रियते विदुषां पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।।३।।

जो त्रिलोक का एक नेत्र, जाना प्रयत्न से आगम को।
यह पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय है प्रगट करूँ विद्वानों को।।३।।

अन्वयार्थ – (लोकत्रयैकनेत्रं) तीन लोक सम्बन्धी पदार्थों को प्रकाशित करने में अद्वितीय नेत्र (परमागमं) उत्कृष्ट जैनागम को (प्रयत्नेन) अनेक प्रकार के उपायों से (निरूप्य) जानकर अर्थात् परम्परा जैन सिद्धान्तों के निरूपणपूर्वक (अस्माभिः) हमारे द्वारा (विदुषां) विद्वानों के लिये (अयं) यह (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय) पुरुषार्थसिद्धि–उपाय नामक ग्रन्थ (उपोद्ध्रियते) उद्धार करने में आता है।

टीका : 'अस्माभिः विदुषां अयं पुरुषार्थसिद्ध्युपायः उपोद्ध्रियते' – मैं ग्रन्थकर्ता, ज्ञानी जीवों के लिए यह पुरुषार्थसिद्धि–उपाय नामक ग्रन्थ अथवा चैतन्य पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने का उपाय प्रकट करता हूँ। 'किं कृत्वा'–क्या करके। 'प्रयत्नेन'–अनेक प्रकार से उद्यम करके सावधानीपूर्वक–'परमागमं निरूप्य'–परम्परा से जैन –सिद्धान्त का विचार करके।

भावार्थ : जिस प्रकार केवली, श्रुतकेवली और आचार्यों के उपदेश की परम्परा है, उसका विचार करके मैं उपदेश देता हूँ। स्वमति से कल्पित रचना नहीं करता हूँ। कैसा है परमागम। 'लोकत्रयैकनेत्रं'–तीन लोक में त्रिलोक सम्बन्धी पदार्थों को बताने के लिये अद्वितीय नेत्र है।।३।।

www.vitragvani.com

गाथा ३ पर प्रवचन

अब, **आगे आचार्य, ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं–** पहले श्लोक में इष्टदेव को नमस्कार किया; दूसरे श्लोक में शास्त्र में अनेकान्तभाव को नमस्कार किया। यह शैली है — देव-शास्त्र-गुरु तीन। गुरु को (नमस्कार) न करके, किसके लिये बनाया है — यह अमृतचन्द्राचार्यदेव की शैली है। समयसार में भी पहले 'नमः समयसाराय' कहा; फिर सिद्धान्त को नमस्कार किया; तीसरे (श्लोक) में, मैं यह शास्त्र कहूँगा - यहाँ से शुरु किया है। तीसरे में, मैं इस शास्त्र को कहूँगा - यहाँ से शुरु किया है। यह शैली यहाँ ली है।

लोकत्रयैकनेत्रं निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन।
अस्माभिरुपोद्ध्रियते विदुषां पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।।३।।

इस ग्रन्थ की विशिष्टता ऐसी है कि मैं यह विद्वानों के लिये कहता हूँ। यह एक शब्द यह बात खास इसमें यह प्रयोग किया है। **'विदुषां'** — ज्ञानी के लिये - ऐसा कहा है। देखो, भाषा। यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, जिसे 'जिन प्रवचन रहस्य कोष' भी कहा गया है। बाद में शब्द में लिखा है। टोडरमलजी में ऐसा नहीं है। इसमें फिर ऐसा है। पहला अधिकार पूरा होता है न? वहाँ ऐसा लिखा है। जिन प्रवचन रहस्य कोष। पहले में नहीं है। यह दर्शन का अधिकार जहाँ पूर्ण होता है न जहाँ, वहाँ लिखा है। वहाँ लिखा, जिसका दूसरा नाम 'प्रवचनरहस्य कोष' है। दर्शन का अधिकार ३६ पृष्ठ। कारण कि भाई में नहीं - टोडरमल में नहीं। है न अन्तिम शब्द! प्रवचन रहस्य कहा है। वहाँ फिर जैन आगम प्रवचन रहस्य — ऐसा कहा, परन्तु वह इसमें नहीं, किन्तु दूसरे में है। उसमें से डाला लगता है। देखो! यहाँ ऐसा लिखा है - प्रवचन रहस्य। और ज्ञान का अधिकार पूरा हुआ, ४३ (पृष्ठ) वहाँ फिर जिनप्रवचन रहस्य कोष - ऐसा लिखा है। वह भी टोडरमल (जी) में नहीं। किसी में शब्द ऐसा डाला, किसी में ऐसा डाला, समान शब्द नहीं हैं। एक प्रकार के शब्द नहीं है, चाहे जिस प्रकार... किसने सब किया है? समान नहीं, समान शब्द आना चाहिए न तब तो। क्योंकि उसमें कहीं नहीं। कहो, क्या कहा? देखो! इसका अन्वयार्थ।

www.vitragvani.com

अन्वयार्थ – तीन लोक सम्बन्धी पदार्थों को प्रकाशित करने में अद्वितीय नेत्र... कैसा है यह परमागम? कि तीन लोक सम्बन्धी पदार्थों को प्रकाशित करने में अद्वितीय, अजोड़ एक नेत्र (है)। **उत्कृष्ट जैनागम को...** परम आगम। परम अर्थात् उत्कृष्ट। **ऐसे जैनागम को 'प्रयत्नेन' अनेक प्रकार के उपायों से...** भाषा ऐसी है। **'प्रयत्नेन'** — इसका अर्थ किया - अनेक प्रकार के उपायों से। **'निरूप्य'** — निरूप्य का अर्थ तो कहना होता है। यहाँ जानकर किया है। जानना होता है, परन्तु जानकर का अर्थ दूसरा लेते हैं। **अर्थात् परम्परा जैन सिद्धान्तों के निरूपणपूर्वक...** ऐसा लिया। परम्परा जैन सिद्धान्त में केवली, श्रुतकेवली, आचार्यों ने जो कहा है, उसके निरूपणपूर्वक इसे हम कहेंगे। इसमें जो कोई अनादि से केवलज्ञानी तीर्थंकर कहते हैं, वह इसमें कहूँगा। हमारी कल्पना की बात इसमें नहीं है।

'अस्माभिः' हमारे द्वारा... देखो! इसमें भाषा ऐसी आयी। समयसार आदि में ऐसा नहीं आता। तीसरे श्लोक में आया कि हम पर्याय से ऐसे हैं, द्रव्य से ऐसे हैं। हम यहाँ **विद्वानों के लिये...** देखो! कर्ता है या नहीं इसमें? वह कहे कर्ता नहीं, वह तो निमित्त का कथन है। पहले तो कहते हैं कि आगे कहेंगे कि वाणी, वाणी से रचती है। शब्दों के विचित्र से यह अक्षर हो गये; मुझसे नहीं। यहाँ तो निमित्तपना बतलाते हैं। **'अस्माभिः'** अर्थात् इसमें निमित्तपना अमृतचन्द्राचार्य का है। इससे बना है — ऐसा नहीं, परन्तु उनका निमित्तपना है, इतना बतलाने को **'अस्माभिः'** शब्द पड़ा है। है न? हमारे से, **हमारे द्वारा...** बना है। इसमें लोग विवाद करते हैं। हमारे द्वारा अर्थात् निमित्त तो मैं हूँ — ऐसा बताने को बात है। आगे तो अन्तिम में निकाल डालेंगे... उस श्लोक में। वही कहते हैं... ऐई! कहा ही नहीं, ऐसा। कहते समय का ही आशय ऐसा है कि यह होता है शब्दों से, परन्तु हम निमित्त हैं; इसलिए हमारे द्वारा-इतना कहने में आया है। कहो! यह सब बड़ा विवाद चलता है। कल पन्ने आये हैं, हों! भाई! यह पन्ने कल ५६ आये हैं। ६२४ तक कल आये हैं। समझ में आया?

हमारे द्वारा... भाषा तो ऐसी ही कहे न, हम कहते हैं वह सुनो! ऐसा बोलते है न! उसका अर्थ ऐसा ही ले लेवे कि कहने के शब्दों का रचनेवाला ही आत्मा है। (वह तो)

www.vitragvani.com

स्वतन्त्र है। व्यवहार से कहा जाता है और व्यवहार को ही निश्चय मान ले... पर आगे स्वयं कहेंगे, भाई! कि व्यवहार को निश्चय माने, वह उपदेश के योग्य नहीं है। यही कहता हूँ, इसने यह शब्द कहे हैं, इसका यह भावार्थ है। व्यवहार से कहा जाता है, उसे ही निश्चय मान ले, वह जीव तो उपदेश के भी योग्य नहीं है। है न? समझ में आया? देखो! छट्ठी गाथा, छट्ठी... छट्ठी।

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वराः देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।

व्यवहार को ही खास जाने, व्यवहार को ही निश्चय जान ले, वह देशना के योग्य नहीं है। कहा न उसमें? '**अस्माभिः**' में आ गया। यह '**अस्माभिः**' – कहते हैं। व्यवहार से कहें, उसे तू निश्चय मान ले कि हम ही कर्ता हैं (तो वह मिथ्या है)। स्वतन्त्र है न! माने। यहाँ तो स्पष्ट कर दिया है। छट्ठी में, देखो! व्यवहार को ही निश्चय मान लेता है। व्यवहार, वह कहा, उसे मान ले कि वास्तव में हम शास्त्र के कर्ता हैं तो वह उपदेश के योग्य नहीं है, सुनने के योग्य नहीं है।

मुमुक्षु : व्यवहार तो है न!

उत्तर : व्यवहार यह नहीं, व्यवहार से — इसका अर्थ क्या? निमित्त कौन है? – उसका ज्ञान करते हैं। व्यवहार से कर्ता है और निश्चय से कर्ता नहीं – तो दो का मेल कुछ रहा नहीं। कर्ता है ही नहीं, परन्तु हमने कहा, उसमें से यदि तू व्यवहार को निश्चय मान ले तो तू हमारी बात सुनने योग्य नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...! योग्य नहीं, क्योंकि समझाने में व्यवहार की कथन पद्धति आती है और तू जब व्यवहार को पकड़ बैठे, तब हमें कहना है तो व्यवहार से वह निश्चय; बताना है वह; व्यवहार का लक्ष्य छुड़ाना है। उसके बदले तू वहाँ कहता है कि देखो! तुमने कहा नहीं था? हमने कहा है — ऐसा नहीं कहा था? हमने कहा है — ऐसा नहीं कहा था? अब सुन न! हमने कहा था, वह तो निमित्त से कहा था, परन्तु तू उसे निश्चय मान लेता है (कि) हम ही शब्दों के कर्ता है – (तो तू) समझता नहीं, बात को समझ सकेगा नहीं, तू समझने के योग्य ही नहीं है। ना ही किया है, देखो न! उसे उपदेश नहीं – ऐसा कहा है। क्या कहना? सामने ही पड़े, वहाँ...

www.vitragvani.com

बोल भाई! मौन होने से लाभ हो। तब तुम मौन क्यों नहीं होते? लो! वह सीधे ऐसा पकड़ता है। बोल नहीं सकते, तब तुम यह बोलते हो न? अब सुन न! किस अपेक्षा से बात चलती है? व्यवहार को ही पकड़े तो तू सुनने योग्य नहीं है। समझ में आया?

हमारे से — ऐसा कहा न? **विद्वानों के लिए...** फिर भाषा ऐसी है। विद्वानों के लिए यह शास्त्र रचा जाता है। क्योंकि बहुत नयों से क्या शैली है निश्चय की, सद्भूत -व्यवहारनय की, असद्भूतव्यवहारनय की क्या अपेक्षा है? — वह अपेक्षा यदि तू नहीं समझे तो यह वस्तु नहीं समझ सकेगा। यथावत् निश्चय-व्यवहार के श्रोता को लेंगे। श्रोता का लेंगे कि निश्चय-व्यवहार का ज्ञाता, वह श्रोता इस बात को सुनने योग्य है। यहाँ श्रोता की अलग गाथा है। यह समझ में आया? श्रोता ऐसे होना चाहिए — ऐसा कहते हैं, आगे कहेंगे। ८ वीं (गाथा)। ८ वीं में श्रोता की बात करेंगे। ८ वीं है न?

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः।।८।।

आठवीं गाथा है। श्रोता ऐसे होने चाहिए। श्रोता के लिये इतनी जवाबदारी है। उसे निश्चय-व्यवहार का जो शब्द आया कि हम कहते हैं - इसमें उसे जानना चाहिए कि यह तो व्यवहार से कहा है। समझ में आया? सुनानेवाले को सीधे पकड़े कि व्यवहार से तुम... भाई! हम कहते हैं, वह समझो - ऐसी भाषा आवे, तब (पकड़े कि) देखो! आया या नहीं? तुम कहते हो — एक आया और तुम्हारे से वहाँ समझ में आता है - यह आया। हम कहते हैं, वह समझो, भाई! तुम कहते हो, वह ख्याल है। हम कहते हैं - अर्थात् भाषा ऐसी; समझो, वहाँ हमारे से - पर से समझ सके, उसके क्रमरहित पर्याय और एक यह हो तो क्रम टूट गया, लो! भाई! तू झगड़ा करे, परन्तु तू व्यवहार और निश्चय के ज्ञान बिना श्रोता-श्रवण के योग्य नहीं है - ऐसा कहा। जब-जब व्यवहार के कथन आवे, (वहाँ समझना कि) यह व्यवहार से कहा है। निमित्त कौन था? — उसका ज्ञान कराया है, उसे समझ। उसमें भी समझनेवाला योग्य है। उसे यह निमित्त होता है, इससे समझ - ऐसा कहा। ऐसे व्यवहार और निश्चय का जाननेवाला हो। भले वक्ता विशेष जानकार है, परन्तु श्रोता में इतना तो व्यवहार-निश्चय का यदि थोड़ा भी लक्ष्य ज्ञान न हो तो व्यवहार-निश्चय

www.vitragvani.com

की बात को एकान्त करके निकाल देगा (कि) नहीं; व्यवहार से कहा, वह भी ठीक है, निश्चय से कहा, वह भी ठीक है। समझ में आया?... चौथी गाथा कहने के पश्चात् वह आठवीं लेगें — मुख्य-उपचार का ज्ञान चाहिए। मुख्य अर्थात् निश्चय। चौथी गाथा में है न? और उपचार अर्थात् व्यवहार कथन। उपचार कथन है, व्यवहार अर्थात् उपचार कथन है। मुख्य, वह निश्चय है। उपचार से कहा गया, उसे यथार्थ मान ले तो वह व्यवहार का जाननेवाला नहीं है। समझ में आया?

हमारे से - ऐसा जो कहा और वह विद्वानों के लिये - फिर ऐसा भी आया न? यह समझनेवाले के लिये। अब समझता है अपने आप उसके कारण और तू कहे कि विद्वानों के लिये। ऐई...! परन्तु क्या हो? यह शैली ऐसी कोई है न! हम इनके लिये, इनके लिये (कहते हैं)। यह कहा न? इनके लिये। ऐ... रतिभाई! यह पर के लिये कहा है? लिखने में बात (कथन) में ऐसा आता है, बापू! उसे पता नहीं। वरना तो स्वयं का विकल्प उत्पन्न हुआ, यह दूसरे के लिये कहते हैं? आहाहा...! परन्तु यह शैली ऐसी होती है न कि यह समझे, यह शैली, ऐसा विकल्प का प्रकार स्वयं का आया है। तब कहते हैं कि **'विदुषां'** विद्वानों के लिये। कारण कि यह तो निश्चय-व्यवहार की सन्धि और उसका स्वरूप भलीभाँति (समझना चाहिए।) वास्तविक भूतार्थ निश्चय; व्यवहार, अभूतार्थ है। अभूतार्थ कहो या यहाँ उपचार कहो। श्रोता, उपचार कथन और अभूतार्थ कथन को न समझे तथा भूतार्थ और निश्चय को न समझे तो वह श्रोता कुछ की कुछ गड़बड़ करेगा; सामनेवाले की भूल निकालेगा। जो हेतु समझाने का (है उस) हेतु को पकड़ेगा नहीं। देखो! इसलिए इन्होंने कहा— **'विदुषां'** के लिये इस परमागम को मैं कहता हूँ। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय नामक ग्रन्थ... देखो! भाषा ऐसी है। यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, पुरुषार्थ — चैतन्यस्वरूप के प्रयोजन की सिद्धि, इस नाम का ग्रन्थ **'उपोद्ध्रियते' उद्धार करने में आता है।** देखो! सर्व शास्त्र में से निकालकर, छाँटकर उद्धार करने में आता है - ऐसा कहते हैं। ग्रन्थ उद्धार करने में आता है, ग्रन्थ किया जाता है। नीति और प्रश्न व्यवहार आया।

टीका : 'अस्माभिः विदुषां अयं पुरुषार्थसिद्ध्युपायः उपोद्ध्रियते'-मैं

www.vitragvani.com

ग्रन्थकर्ता,... लो! हम ग्रन्थकर्ता। प्रवचनसार में अन्त में ऐसा कहा, भाई! हम इसके वाक्य करनेवाले हैं और इससे वाणी तुझे समझाती है और उस द्वारा तू समझने के योग्य है — ऐसा व्यामोह निकाल दे। गजब बात! समझ में आया? हम व्याख्याता हैं और ये शब्द व्याख्येय हैं और ये तुझे समझाते हैं — ऐसा व्यामोह निकाल दे। यहाँ कहते हैं कि हम इसे समझाते हैं। ऐई...! एक के एक अमृतचन्द्राचार्य का वहाँ का कथन और यहाँ कथन, बहुत अन्तर है! यह कहते हैं कि व्यवहार और निश्चय का उसे उपचार और अनुपचार का यथावत् ज्ञान होना चाहिए। यहाँ श्रोता की भी इतनी जवाबदारी गिनने में आयी है। समझ में आया? क्या हो? इसमें दूसरा बने क्या?

मैं ग्रन्थकर्ता, ज्ञानी जीवों के लिए... 'विदुषां' का अर्थ किया अर्थात् समझाने के ज्ञानी को कुछ समझने की जिज्ञासा है और समझने का इच्छुक है, ऐसे **ज्ञानी जीवों के लिए यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय नामक ग्रन्थ अथवा...** पुरुषार्थसिद्धि-उपाय का अर्थ करते हैं। **चैतन्य पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने का उपाय प्रकट करता हूँ।** लो! ऐसा सिद्ध किया। कैसा है प्रभु आत्मा? चैतन्यपुरुष! चैतन्यपुरुष का प्रयोजन, अर्थात् चैतन्यपुरुष है आत्मा; उसका प्रयोजन सिद्धि, सिद्धि, उसका प्रयोजन सिद्ध करने का उपाय प्रगट करते हैं, प्रगट करते हैं। भाईसाहब! आहाहा...! अरे..रे! क्या हो? ऐसा विवाद, ऐसा विवाद (करे) इसमें ऐसा लिखा है न, सिर फोड़े।

'किं कृत्वा'-क्या करके। 'प्रयत्नेन'-अनेक प्रकार से उद्यम करके... ऐसा। अनेक प्रकार से प्रयत्न (करके)। प्र...यत्न, है न शब्द? अर्थात् प्र से, विशेष पुरुषार्थ से, सावधानी से। कहीं अन्दर अन्तर नहीं आवे - ऐसी सावधानी से पुरुषार्थसिद्धि-उपाय-चैतन्य के चैतन्यरूपी पुरुष की प्रयोजन की सिद्धि सावधानी से करना। समझ में आया? जिसमें पुरुषार्थ - चैतन्य का प्रयोजन सिद्ध होगा - ऐसी बात मैं करूँगा। कहो, समझ में आया? यह समयसार का कथन है। न्यालभाई! इसमें भी दूसरे के प्रकार होते हैं। ऐसा कि यह सब समयसार... बात तो एक हो, परन्तु उसके भी प्रकार, बहुत पहलूओं में विविधता में विरोधता कहीं दिखती हो, विविधता में विरोधता कहीं दिखती हो तो उस विरोधता के मथनं-नाश करने के ये सब प्रकार हैं। समाधितन्त्र, पुरुषार्थसिद्धि-उपाय सब बताते तो जो

www.vitragvani.com

है वही है, परन्तु वस्तु के बहुत प्रकार के पहलू होते हैं, उन्हें समझाने के लिये यह बात है। समझ में आया?

'परमागमं निरूप्य'–परम्परा से जैन सिद्धान्त का विचार करके। ऐसा यहाँ कहा। विचार करके, वहाँ जानकर – ऐसा कहा, पहले में जानकर (–ऐसा कहा था)। यह तो निरुपणपूर्वक – ऐसा कहा। परम्परा से भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की जो वाणी, वह केवली, श्रुतकेवली और आचार्यों से आयी है। उनके जैन सिद्धान्तों का विचार। परमागम है न? अन्य के शास्त्र नहीं। परम भगवान की वाणी जो परम्परा (से) आयी है; उसके अनुसार हम विचार करके यह पुरुषार्थसिद्धि–उपाय कहेंगे; इसमें कोई फेरफार आयेगा नहीं।

भावार्थ : जिस प्रकार केवली, श्रुतकेवली और आचार्यों के उपदेश की परम्परा है... जिस प्रकार अनादि केवली की प्ररूप, प्ररूप–उपदेश की परम्परा है, जिस प्रकार केवली के उपदेश की परम्परा है, ऐसे एक–एक पर लेना। ऐसे श्रुतकेवली के उपदेश की परम्परा है। ऐसे ही आचार्यों के उपदेश की परम्परा है। समझ में आया? उसका विचार करके, **उसका विचार करके...** हम श्रुतकेवली छद्मस्थ और सर्वज्ञ और आचार्य–श्रुतकेवली न हों – ऐसे दूसरे आचार्य, उनके **उपदेश की परम्परा है, उसका विचार करके मैं उपदेश देता हूँ।** हम उपदेश करते हैं। उपदेश किया नहीं जा सकता और यहाँ उपदेश करते हैं (– ऐसा कहते हैं), विकल्प आया है, इतना ज्ञान कराने को उपदेश करते हैं – ऐसा निकलता है, भाई! क्या हो? यह वस्तु की शैली ऐसी है, इससे श्लोक में इन्होंने ऐसा कहा है कि श्रोता, व्यवहार और निश्चय का जाननेवाला होना चाहिए। भाई! यह न जाने तो उसका कुछ का कुछ अर्थ कर डालेगा – शास्त्र के अर्थ में भी गड़बड़ खड़ी करेगा। क्या हो?

स्वमति से कल्पित रचना नहीं करता हूँ। स्वमति से कल्पित रचना नहीं करते। देखो! प्रमाण सिद्ध किया। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर (की) परम्परा से जो आया, श्रुतकेवलियों ने कहा और आचार्यों ने कहा, जो कुन्दकुन्द आदि आचार्यों (ने कहा), उसके अनुसार हम कहेंगे। विचार, उसका भी विचार करके। **'निरूप्य'** है न? समझकर, विचारकर,

www.vitragvani.com

मनन करके, निर्णय करके। ऐसा का ऐसा दे रखा - ऐसा नहीं। आहा! वस्तु को स्वच्छ सिद्ध करने को कितनी अपेक्षाएँ रखते हैं।

कैसा है परमागम। परम-आगम, महा शास्त्र, महा सिद्धान्त। **'लोकत्रयैकनेत्रं' - तीन लोक में त्रिलोक सम्बन्धी पदार्थों को बताने के लिये अद्वितीय नेत्र है।** जगत के-तीन लोक में जो पदार्थ हैं; तीन लोक में केवली भी हैं, अनन्त निगोद के जीव भी हैं, सिद्ध भी हैं, तीर्थंकर भी हैं। कहो, समझ में आया? **'लोकत्रयैकनेत्रं'** तीन लोक में, तीन लोक सम्बन्धी पदार्थों को बताने के लिये यह परमागम अद्वितीय नेत्र है, अजोड़ नेत्र है अथवा एक ही आँख है। परमागम एक ही आँख है। सिद्ध को बताने, परमात्मा को बताने, पंच परमेष्ठी के स्वरूप को बताने, मोक्ष का मार्ग (बताने); तीन लोक में सब आ गया न यह? बन्धमार्ग को बताने, मोक्षमार्ग को बताने, अनन्त आत्माओं को बताने, परमानन्द की प्राप्ति - ऐसे परमात्मा को बताने को यह एक परमागम अद्वितीय एक अजोड़ नेत्र है।

गाथा - ४

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में वक्ता, श्रोता और ग्रन्थ का वर्णन करना चाहिए–ऐसी परम्परा है।

इसलिए प्रथम ही वक्ता का लक्षण कहते हैं–

मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधाः।
व्यवहार निश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्।।४।।

मुख्य और उपचार कथन से शिष्यों का अज्ञान हरें।
जानें निश्चय अरु व्यवहार सुधर्म–तीर्थ उद्योत करें।।४।।

अन्वयार्थ : (मुख्योपचार विवरण निरस्त दुस्तर विनेय दुर्बोधाः) मुख्य और उपचार कथन के विवेचन से प्रकटरूपेण शिष्यों का दुर्निवार अज्ञानभाव जिन्होंने नष्ट कर दिया है तथा (व्यवहारनिश्चयज्ञाः) जो व्यवहारनय और निश्चयनय के ज्ञाता हैं, ऐसे आचार्य (जगति) जगत में (तीर्थं) धर्मतीर्थ का (प्रवर्तयन्ते) प्रवर्तन कराते हैं।

टीका : 'व्यवहार निश्चयज्ञाः जगति तीर्थं प्रवर्तयन्ते' – व्यवहार और निश्चय के जाननेवाले आचार्य इस लोक में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कराते हैं। कैसे हैं आचार्य? 'मुख्योपचार विवरण निरस्त दुस्तर विनेय दुर्बोधाः' – मुख्य और उपचार कथन से शिष्य के अपार अज्ञानभाव को जिन्होंने नाश किया है, ऐसे हैं।

भावार्थ : उपदेशदाता आचार्य में अनेक गुण चाहिए परन्तु व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए। किसलिए? जीवों को अनादि से अज्ञानभाव है, वह मुख्य (निश्चय) कथन और उपचार (व्यवहार) कथन के जानने से दूर होता है। वहाँ मुख्य कथन तो निश्चयनय के आधीन है, वही बताते हैं। 'स्वाश्रितो निश्चयः' जो अपने ही आश्रय से हो उसको निश्चय कहते हैं। जिस द्रव्य के अस्तित्व में जो भाव पाये जावें, उस द्रव्य में उनका ही स्थापन करना, तथा परमाणुमात्र भी अन्य कल्पना न करने का

www.vitragvani.com

नाम स्वाश्रित है। उसका जो कथन है, उसी को मुख्य कथन कहते हैं। (मुख्य-निश्चय) 'इसको जानने से अनादि शरीरादि परद्रव्य में एकत्व श्रद्धानरूप अज्ञानभाव का अभाव होता है, भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है, सर्व परद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है। वहाँ परमानन्ददशा में मग्न होकर केवलदशा को प्राप्त होता है। जो अज्ञानी इसको जाने बिना धर्म में प्रवृत्ति करते हैं, वे शरीराश्रित क्रियाकाण्ड को उपादेय जानकर, संसार का कारण जो शुभोपयोग, उसे ही मुक्ति का कारण मानकर, स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए संसार में भ्रमण करते हैं। इसलिए मुख्य (निश्चय) कथन का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।' और वह निश्चयनय के आधीन है, इसलिए उपदेशदाता निश्चयनय का ज्ञाता होना चाहिए। कारण कि स्वयं ही न जाने तो शिष्यों को कैसे समझा सकता है?

तथा 'पराश्रितो व्यवहार:' जो परद्रव्य के आश्रित हो, उसे व्यवहार कहते हैं। किंचित् मात्र कारण पाकर अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करे, उसे पराश्रित कहते हैं।' उसी के कथन को उपचार-कथन कहते हैं। इसे जानकर शरीरादि के साथ सम्बन्धरूप संसारदशा है, उसका ज्ञान करके, संसार के कारण जो आस्रव-बन्ध हैं, उन्हें पहिचान कर, मुक्त होने के उपाय जो संवर-निर्जरा हैं, उनमें प्रवर्तन करे। अज्ञानी इन्हें जाने बिना शुद्धोपयोगी होने की इच्छा करता है, वह पहले ही व्यवहार-साधन को छोड़कर पापाचरण में लीन होकर, नरकादि के दु:ख-संकटों में जा गिरता है। इसलिए उपचार-कथन का भी ज्ञान होना चाहिए। और वह व्यवहारनय के आधीन है, अत: उपदेशदाता को व्यवहार का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इस भाँति दोनों नयों के ज्ञाता आचार्य, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक होते हैं, अन्य नहीं।।४।।

गाथा ४ पर प्रवचन

अब, **इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में वक्ता, श्रोता और ग्रन्थ का वर्णन करना चाहिए ऐसी परम्परा है।** इस गन्थ की शुरुआत में वक्ता कैसा होना चाहिए - कहनेवाला कैसे होना चाहिए, प्ररूपक कैसा होना चाहिए, यह नयी पुस्तक अभी छपा है '....'! बहुत सादी भाषा है, कोई ऐसी बहुत (कठिन) नहीं है, थोड़ी-थोड़ी सीखना।

www.vitragvani.com

श्रोता : कठिन पड़ता है।

उत्तर : कठिन पड़े तो सादी (भाषा में) कहते हैं। कहो, समझ में आया? इस ग्रन्थ की शुरुआत में वक्ता / कहनेवाला कैसा चाहिए? शास्त्र का प्ररूपक कैसा चाहिए? और शास्त्र का सुननेवाला कैसा चाहिए? समझ में आया? और ग्रन्थ में वर्णन क्या आयेगा? – ये तीन बातें करेंगे। **ऐसी परम्परा है।** ऐसी अनादि की परम्परा है। श्रोता कैसा, वक्ता कैसा और क्या कहना है – इसकी परम्परा से यह बात हम कहेंगे।

इसलिए प्रथम ही वक्ता का लक्षण कहते हैं–

मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधाः।
व्यवहार निश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्।।४।।

देखो! यहाँ से उठाया है, मुख्य। **मुख्य और उपचार कथन के विवेचन से...** मुख्य अर्थात् निश्चय। देखो! यहाँ मुख्य अर्थात् निश्चय, वह मुख्य है और व्यवहार अर्थात् उपचार कथन है। उनके कथन के विवेचन द्वारा, स्पष्टता द्वारा **प्रकटरूपेण शिष्यों का दुर्निवार... 'निरस्त दुस्तर विनेय' दुर्निवार अज्ञानभाव जिन्होंने नष्ट कर दिया है...** समझ में आया? **'विनेय'** विनेय शिष्य, विनेय अर्थात् शिष्य। उसका **'दुर्बोधाः'** अर्थात् अज्ञानभाव, **'निरस्तदुस्तर'** दुर्निवार, उसका नाश किया। समझ में आया? ऐसे गुरु–वक्ता चाहिए – ऐसा कहते हैं। शिष्य का बाद में कहेंगे।

मुख्य और उपचार कथन के विवेचन से प्रकटरूपेण शिष्यों का दुर्निवार अज्ञानभाव... जो अज्ञान–अनादि से निवारण नहीं किया जा सका, उसके अज्ञान को **जिन्होंने नष्ट कर दिया है...** शिष्य का, लो! **शिष्यों का दुर्निवार अज्ञानभाव जिन्होंने नष्ट कर दिया है...** लो! आया या नहीं? ऐ..ई..! इसका अर्थ कि जिसका अज्ञान नाश हो, ऐसा इसका ज्ञान है, ऐसी इनकी कथनी है, ऐसा इन्हें भाव उठा है कि इसी भाव से अज्ञान नाश होगा। अज्ञान जो है, वह इससे नाश होगा, ऐसे कथन करनेवाले, निश्चय और व्यवहार को भलीभाँति जाननेवाले ये वक्ता, शिष्य के दुर्निवार अज्ञान को नाश करने में निमित्त हैं; उसे नाश करते हैं – ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसे तथा... एक तो यह। उसे यहाँ स्वच्छन्द है और कहाँ भूलता है, वह व्यवहार–

www.vitragvani.com

निश्चय बतावे उसे। समझ में आया? और स्वयं **व्यवहारनय और निश्चयनय के ज्ञाता हैं,...** समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वक्ता ऐसा है कि सामनेवाले के दुर्निवार अज्ञान का नाश ही हो, ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? उनका उपदेश ही ऐसा होता है। जिन्हें पूर्वापर विरोधरहित निश्चय और व्यवहार का भलीभाँति उपचार और मुख्यता का ज्ञान है। **ऐसे आचार्य, जगत में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कराते हैं।** लो! शिष्य के दुर्निवार अज्ञान को नाश करने की जिनकी सामर्थ्य है अर्थात् ऐसा जो जिनका भाव (है), उसमें कहाँ-कहाँ उसकी भूल है और कहाँ वह स्वयं अटका है... समझ में आया? उसे सन्धि बतलाते हैं। स्वयं निश्चय-व्यवहार के ज्ञाता हैं। यथार्थ मुख्य वस्तु के ज्ञाता हैं, उपचार से कहने में आयी हुई बात को भी, उपचार से क्यों कहा - इसका भी ज्ञान है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें बहुत स्पष्टता है। समयसार में तो अकेला मक्खन भरा है। उसे दूसरे प्रकार से वापस श्रोता-वक्ता के बहुत प्रकार से इसे यहाँ समझाते हैं।

तथा जगत में धर्मतीर्थ '**प्रवर्तयन्ते**'। लो! धर्मतीर्थ प्रवर्ताते हैं। लो! ऐई...! प्रत्येक गाथा में निश्चय-व्यवहार का ज्ञान नहीं होवे तो कहते हैं श्रोता को समझ में नहीं आयेगा और व्यवहार तथा निश्चय का ज्ञान इसे न हो तो उसका (श्रोता का) अज्ञान नाश नहीं होगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में आवे तो कहे, यह कहा, देखो! इसमें कहा। यह शब्द हम रचते हैं, हम शब्द के कर्ता हैं। निमित्तकर्ता हैं - ऐसा तो आता है या नहीं शास्त्र में? भाई! वह तो व्यवहार का कथन है, कर्ता-फर्ता तो नहीं। किसका कर्ता? किसकी पर्याय कौन करे? द्रव्य की धारावाही पर्याय जहाँ चले, उसे दूसरा करे कौन? अपनी धारावाही चले, वह दूसरे के करने में रुके कौन? समझ में आया? परन्तु व्यवहार के कथनों की पद्धति ही-वाणी ऐसी होवे, ऐसा उसे ज्ञान ठीक से होना चाहिए।

प्रवर्तन कराते हैं। देखो! धर्मतीर्थ प्रवर्ताते हैं। कितनी भाषा है इसमें? और स्वयं कहे - केवली, श्रुतकेवली और आचार्यों की परम्परा का विचार करके हम यह शास्त्र रचते हैं; इसमें कुछ भी फेरफार नहीं, सन्धि जुड़ती है - ऐसा कहते हैं। भगवान कहते हैं, उसी बात को हम कहेंगे, दूसरी बात है नहीं।

टीका : 'व्यवहार निश्चयज्ञाः जगति तीर्थं प्रवर्तयन्ते'-लो! यह तो आया न

www.vitragvani.com

उसमें ? व्यवहार-निश्चय का जाननेवाला। आठवीं गाथा में। महारथी समयसार! वह बात है। **व्यवहार और निश्चय के जाननेवाले आचार्य...** उपचार का क्या स्वरूप है और क्यों कहा गया ? और निश्चय का वास्तविक क्या स्वरूप है, उसे क्यों कहना है ? – इसके भलीभाँति जाननेवाले आचार्य चाहिए। इसे जाने बिना उपदेशक बने तो वह उपदेश स्वयं को नुकसान करे, दूसरे को भी नुकसान करे – ऐसा कहलाये। यहाँ 'मिटाते हैं' – ऐसा है न ? यह करे। कहो, समझ में आया इसमें ? व्यवहार, उपचार कथन है, अभूतार्थ कथन है; निश्चय, वास्तविक कथन है, यथार्थ वस्तु है। इसके जो **जाननेवाले आचार्य इस लोक में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कराते हैं।** लो! दया जहाँ आयी; पर की दया; वहाँ वह (कहने) आवे कि देखो! यह पर की दया आयी। पर की दया, वह धर्म! परन्तु भाई! यह तो व्यवहार-उपचार का कथन है! पर की दया कोई कर नहीं सकता; मात्र पर की स्थिति में इसे जावे शुभभाव आया, उसका ज्ञान कराने को ऐसा कहा है कि यह पर की दया पालन की! और उसे व्यवहारधर्म भी कहा जाता है। व्यवहारधर्म अर्थात् उपचार से कहलाता है; वह वास्तविक धर्म नहीं है। वह दया ही वास्तविक नहीं है। लोग चिल्लाने लगते हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं – राग की अनुत्पत्ति, वह अहिंसा; राग की उत्पत्ति, वह हिंसा (है)। चाहे तो शुभराग हो या चाहे तो अशुभराग हो। भले ही कहीं शुभराग को व्यवहारधर्म कहा हो तो भी, वह निश्चय से तो राग की उत्पत्ति है, वह हिंसा है। समझ में आया ? इसका भी विवाद, अभी तो बहुत विवाद उठे हैं। सब बाहर आये। गुप्त थे, वे (बाहर आये।) इसमें बहुत लिखान आया है।

इस लोक में, इस लोक में ऐसे आचार्य, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कराते हैं। लो! अर्थात् कि तीर्थ चलनेवाले के निमित्त ऐसे जीव होते हैं – ऐसा कहते हैं। उसकी उपादान दशा में तिरने के उपायों को साधता है, उसे ऐसे आचार्य निमित्तरूप होते हैं, खोटे होते नहीं – इतना सिद्ध करना है। कहो, समझ में आया ? ऐसे तिरनेवाले के आत्मा को, तिरनेवाला आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति का आश्रय लेकर, जो पर्याय में तिरता है, संसार से तिरता है, ऐसे जो तीर्थ और साधक जीव, उन्हें ऐसे आचार्य निमित्त होते हैं – ऐसा कहते हैं। जिन्हें

www.vitragvani.com

निश्चय-व्यवहार का ज्ञान नहीं, जिन्हें परमागम क्या है - इसका भान नहीं, अनेकान्त क्या चीज है - उसका पता नहीं; ऐसे जीव, उन्हें निमित्त नहीं होते हैं। इसलिए उसे ऐसे निमित्त होते हैं, उन्हें जगत का तीर्थ प्रवर्तन कराते हैं - ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया इसमें?

कैसे हैं आचार्य? मुख्य और उपचार कथन से... देखो! मुख्य अर्थात् यथार्थ / निश्चय, **उपचार...** अर्थात् व्यवहार के कथन द्वारा! **शिष्य के अपार अज्ञानभाव को... 'निरस्त'** कहा है न? अज्ञानभाव को जिन्होंने नाश किया है, ऐसे हैं। लो! यहाँ तो अज्ञानभाव को नाश किया है, ऐसे ही आचार्य लिये हैं। उपादान-निमित्त दोनों समरूप लिये हैं। समझ में आया या नहीं? (समयसार) पाँचवीं गाथा में आया न? **'जदि दाएज्ज पमाणं'** बस! यह शब्द है। दिखाऊँ तो अनुभव करना, अनुभव करके प्रमाण करना, ऐसा। दिखाऊँ तो अनुभव करके प्रमाण करना, बस! यह शैली है, लो! पाँचवीं गाथा। **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण'** बस! इतना। यह सामान्य बात। फिर **'जदि दाएज्ज पमाणं'** दिखाऊँ तो अनुभव करके प्रमाण करना।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं - मुख्य अर्थात् निश्चय और उपचार अर्थात् व्यवहार कथन द्वारा **शिष्य के अपार अज्ञानभाव को...** अपार अज्ञानभाव को, लो! **जिन्होंने नाश किया है,...** ऐसे आचार्य हैं। अज्ञानभाव का नाश किया और मिथ्यात्वभाव का नाश किया - उसकी ही यहाँ तो बातें चलती हैं। फिर स्थिरता की बातें करेंगे। अभी पहले अज्ञान का नाश हुए बिना, ज्ञान हुए बिना स्थिर कहाँ हो? यह ग्रन्थ है तो श्रावकाचार, हों! समझ में आया? श्रावक में भी श्रावक के जीव को अज्ञाननाशक आचार्य मिलते हैं, तब उसका अज्ञान नाश होता है; फिर उस श्रावक के योग्य व्रत के विकल्प उसे होते हैं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ : उपदेशदाता आचार्य में अनेक गुण चाहिए,... भावार्थ है न? उपदेशदाता-उपदेश का देनेवाला; दाता अर्थात् देनेवाला। उपदेशदाता। देखो! ऐ..ई...! एक ओर कहे कि एक समय की पर्याय को द्रव्य, दाता नहीं। अरे..अरे...! यह तो क्या बात! चन्दुभाई! योगसार में कहते हैं - भगवान आत्मा, वह एक समय की पर्याय का द्रव्य

www.vitragvani.com

दाता नहीं। आहाहा! ऐ..ई! पर्याय, वह स्वतन्त्र प्रगट होती है; द्रव्य दाता नहीं, क्योंकि यदि द्रव्य दाता होवे तो द्रव्य की पर्याय सब एक सरीखी होनी चाहिए; और भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्याय आती है; इसलिए वास्तव में द्रव्य, दाता नहीं है, परन्तु उसकी स्वतन्त्र पर्याय का काल ही ऐसा है, ऐसी प्रगट होती है। आहाहा! शोभालालभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! जैनदर्शन ऐसी चीज है। आहाहा!

भगवान आत्मा, अरे...! कोई भी परमाणु भी उसकी पर्याय का दाता किस प्रकार सिद्ध होगा? द्रव्य और गुण तो ऐसे के ऐसे हैं। ऐसा का ऐसा, तो भी भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्याय प्रगट होती है, उसका कारण यदि द्रव्य-गुण कहोगे तो द्रव्य-गुण तो ऐसे के ऐसे हैं। समझ में आया? बापू! सत् को सिद्ध करने की (शैली है।) उत्पाद किस प्रकार होता है? सत् का उत्पाद स्वतन्त्र है, उसका ध्रुव भी दाता नहीं है। आहाहा! यह वस्तु की स्थिति का निश्चय वस्तु है। यहाँ उपदेश दाता, आहाहा! भाई! किस अपेक्षा से है – यह व्यवहार-निश्चय भलीभाँति जानना चाहिए। समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! यह तो सब पूर्व-पश्चिम का फर्क है। कहते हैं कि उसे मुख्य और उपचार-दो का ज्ञान तो आचार्य को होना चाहिए। समझ में आया? फिर श्रोता का कहेंगे। आठवीं गाथा में, यह आठवीं गाथा में कहेंगे। यहाँ तो (वक्ता की) बात ली है। आठवीं में वह कहेंगे। समझ में आया? **श्रोता कैसे गुणवाला होना चाहिए? 'व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्यतत्त्वेन भवति मध्यस्थः।'** यह आठवीं में कहेंगे। बहुत सरस! 'पुरुषासिद्धि-उपाय'! यह तो एक-एक शास्त्र, दिगम्बर सन्तों द्वारा कहा गया, अलौकिक रीत है! समझ में आया? सर्वज्ञपरमेश्वर से आये हुए भावों को उसी प्रकार परम्परा से प्रवाहित रखा है। दिगम्बर मुनि महासन्त, धर्म के स्तम्भ!

कहते हैं, उपदेशदाता! भाषा देखो न! समझ में आया? **उपदेशदाता आचार्य में...** अथवा उपदेश करनेवाला जो आत्मा है, उसमें **अनेक गुण चाहिए...** अनेक गुण होते हैं, **परन्तु व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए।** देखो! भाषा। दूसरे गुण भले (हों), परन्तु यह जो व्यवहार-निश्चय, (उनका जानपना तो होना ही चाहिए।) क्योंकि यह तो जैनधर्म का स्तम्भ अथवा वस्तुस्वरूप को समझने की मुख्यता और प्रयोजन... उपचारता, यह तो वस्तु की स्थिति है, उसे यदि न जाने तो दूसरे गुण चाहे कितने भी हों परन्तु वह गुण सबको नुकसान कर डाले। समझ में आया?

www.vitragvani.com

व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए। देखा? मुख्य चाहिए। यह, जिसे ज्ञान में यह मुख्य चाहिए। कहो, समझ में आया? वास्तविक तत्त्व और उपचारिक तत्त्व का जहाँ ज्ञान न हो तो उस मुख्य बिना वह उपदेश करेगा क्या? गड़बड़ करेगा और जगत के जीवों को नुकसान का कारण होगा। वह तो यहाँ लाभ का कारण कहना है न? उपदेशदाता नुकसान का कारण (होगा), ऐसा। व्यवहार के सब कथन ऐसे ही होते हैं। समझ में आया? आहाहा! वजन यहाँ है—**व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए।** जानपना मुख्य चाहिए। त्यागी हो गया हो या अत्यन्त बहुत वीतरागी हो गया हो, यह प्रश्न नहीं। भले मुनि है, आचार्य निर्ग्रन्थ (हों) परन्तु उन्हें यह मुख्य चाहिए। उनके ज्ञान में निश्चय और उपचार / व्यवहार - दो का ज्ञान मुख्य होवे तो वह गाड़ी चलायेगा, वरना पूरी गाड़ी टूटेगी, गाड़ी अटकेगी, मार्ग नहीं चलेगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका अभी विवाद। व्यवहार के कथन आवे न, इतने अधिक कथन पढ़े, सब पढ़े... ५६८ पृष्ठ पढ़े, ६२४ पृष्ठ है, ठीक, परन्तु अब लोगों को जानकारी मिलेगी। जिसे समझना हो, उसे... फूलचन्दजी जैसे भी बहुत मेहनत की न।

वाणी स्वाश्रित है या पराश्रित है? - ऐसे प्रश्न हैं। 'वक्ता पमाणं पुरुष पमाणं' — ऐसे शास्त्र में लिखा है। ऐई! देखो! उपदेशदाता कहा या नहीं? वक्ता प्रमाणे... क्या कहा? पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण, पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण। ऐई..! देवानुप्रिया! पण्डितजी! पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण। वचन की प्रमाणता पुरुष के प्रमाण से है। वचन की प्रमाणता वचन के कारण कहाँ से आयी? व्यवहार सिद्ध हो गया, देखो! आता है या नहीं बहुत जगह? वक्ता जैसा हो, वैसी उसकी वाणी प्रमाण की हो।

यहाँ कहा न? वक्ता-उपदेशदाता ऐसा हो तो उसकी वाणी अच्छी हो। वाणी का आधार तो उपदेश का (वक्ता का) आया। वाणी पराश्रित हुई। वाणी को प्रमाणपना पराश्रितपने आया, परन्तु यह व्यवहार है; ऐसा यथार्थ नहीं है। वाणी की पर्याय प्रमाणरूप से स्व-स्वयं के आश्रय से ही परिणम रही है, वाणी का ऐसा धर्म है। समझ में आया? शास्त्र में कथन ऐसा आया कि वक्ता के प्रमाण से वचन प्रमाण। वहाँ (ऐसा कहते हैं), देखो! वाणी को इसका आधार आया... देखो! परन्तु वाणी की पर्याय स्वतन्त्र हुई है, वहाँ

www.vitragvani.com

आधार-फाधार है ही नहीं, सुन न! वाणी में भगवान के भाव भरे हैं। भरे नहीं; वाणी में तो वाणी के भाव भरे हैं। भगवान के भाव वहाँ कहाँ से (आये)? वह (वाणी) तो पुद्गल की पर्याय है, शब्द है। वाणी तो शब्द की पर्याय है, (शब्दरूप) पर्याय में वहाँ भगवान के भाव कहाँ से आये? आत्मा के भाव वहाँ आये? अरे! बहुत कठिन बात है! ऐई! शोभालालजी! तुम्हारे कितने ही तारणस्वामी के पण्डित बहुत कहते हैं, देखो! वाणी में ऐसा है, मूर्ति में ऐसा है, वाणी (ऐसा है) परन्तु दोनों को समझते नहीं। मूर्ति में कहाँ भाव आये परन्तु? वाणी में तो उसके भाव हैं, ऐसा है; परन्तु उसमें भी भाव जड़ के हैं, वहाँ कहाँ आत्मा के थे? आहाहा! बड़ी चर्चा चली है इसमें, पृष्ठ आयेंगे, बहुत विस्तार से लेंगे। वाणी के रजकण स्वतन्त्र स्वयं से परिणमते हैं। आत्मा था, इसलिए परिणमते हैं – ऐसा नहीं है। वाणी स्वाश्रित प्रमाण है। आहाहा!

प्रश्न : केवलज्ञान अनुसारिणी...

उत्तर : केवलज्ञान का कार्य व्यवहार से कहा जाता है। आता है शास्त्र में। अनुसारिणी का कार्य भी आता है। केवलज्ञान कारण-ज्ञान कारण और वाणी कार्य। लो! परन्तु क्या है इसमें? अर्थात् क्या? वाणी कार्य है? यह तो निमित्तपना बतलाया है। परमाणु का पर्याय में-स्कन्ध की पर्याय में वाणी का भाव है। भगवान के भाव वहाँ आये हैं? ऐसे जिसे व्यवहार-निश्चय का पता नहीं है – ऐसा जो आचार्य, (वह) उपदेश के योग्य नहीं होता। समझ में आया? मुख्य गुण यह चाहिए। **किसलिए?** यह विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)